मेक इन इंडिया, व्यापक रूप से भारत के लिए ही है*

रघुराम राजन

अमेरिका की मजबूती प्रदान करने वाली वापसी होने के बावजूद वैश्विक अर्थव्यवस्था अभी कमजोर है। यूरो क्षेत्र मंदी के करीब जा रहा है, कर वृद्धि के बाद जापान में पहले ही दो तिमाहियों में ऋणात्मक वृद्धि हुई, बहुत सी अर्थव्यवस्थाएं उनके निर्यात प्रधान वृद्धि मॉडलों पर पुनर्विचार कर रही हैं क्योंकि औद्योगिक जगत ठहरा हुआ है। पिछले दो वर्षों के दौरान अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने वृद्धि के अपने पूर्वानुमानों में बार-बार कमी की है। संकट के बाद के 6 वर्षों में हुई उत्साहहीन बहाली के बाद अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपने नवीनतम विश्व आर्थिक परिदृश्य का शीर्षक 'विरासत, बादल, अनिश्चितताएं' रखा है।

परंपरागत निदान एवं उपचार

क्यों सारी दुनिया को महामंदी के पहले की वृद्धि दरों की बहाली इतनी मुश्किल लग रही है ? सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को उसी स्तर पर बहाल होने दीजिए, जो होता अगर महामंदी का आगमन नहीं हुआ होता। स्वभाविक उत्तर यह है कि कर्ज महामंदी आने के पहले वित्तीय तेजी की विरासत है। कर्ज के प्रभाव से वृद्धि पिछड़ी हुई है, कर्ज चाहे सरकारों पर हो, पारिवारिक इकाइयों पर हो या बैंकों पर हो। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रबंध निदेशक के रोचक शब्दों में कहें तो, हमें 'नए औसत दर्जे' के दौर से गुजर रहा है। प्रभाव यह है कि वृद्धि अपने संभव स्तर की तुलना में अस्वीकार्य रूप से निम्न स्तर पर है तथा इसे बढ़ाने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है, विशेषरूप से इस बात के मद्देनजर कि बहुत सी अर्थव्यवस्थाएं अपस्फीति से जूझ रही हैं। अतः परंपरागत नीतिगत राय का आग्रह यह है कि संक्षेपाक्षरों के हमेशा विस्तारित होने वाले समूहों सहित अधिक नवोन्मेषी मौद्रिक हस्तक्षेप किए जाएं। ऐसा तब भी किया जाना चाहिए जब सरकारों से आधारभूत संरचना जैसी 'स्वभाविक' जरूरतों पर खर्च करने का आग्रह किया गया हो। संरचनागत सुधारों की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है किंतु उनको विशिष्ट रूप से पीड़ादायक तथा संभवतः अल्पावधि में वृद्धि को कम करने वाला माना गया है। इसलिए जोर मौद्रिक और राजकोषीय प्रेरकों पर है और कर्ज के विनाशकारी प्रभावों को देखते हुए जहां तक संभव हो यह किया जाना चाहिए।

इस तरह की नीतिगत राय के प्रभावों को अभी परखा जाना है। किंतु जापानियों ने पिछले दो दशकों के दौरान, लंबे समय तक ब्याज दरों को निम्न स्तर पर रखना, मात्रात्मक सुगमता एवं बड़े कर्ज-आधारभूत संरचना पर वित्तीयन के माध्यम से खर्च सहित इन सभी को आजमा कर देख लिया है। कोई यह नहीं कहेगा कि जापान अपनी रुग्ड अवस्था से बाहर आ गया है।

भिन्न प्रकार का निदान

संकट-पूर्व की अवधि का अब एक भिन्न प्रकार का वर्णन सामने आ रहा जो इस बात की व्याख्या कर सकता है कि क्यों संकट[1] गुजर जाने के 6 वर्षों के बाद भी अर्थव्यवस्थाओं को संकट-पूर्व के वृद्धि मार्ग पर वापस लाने के प्रयास सफल नहीं हुए हैं। वर्तमान में बनी हुई आर्थिक रुग्णता की व्याख्या करने के लिए लारी समर्स द्वारा प्रयुक्त शब्द 'सेक्युलर स्टेगनेशन' लोकप्रिय[2] हो चुका है, जो महामंदी के दौरान 1938 में एल्विन हासेन के भाषण को प्रतिध्वनित करता है। परन्तु अलग-अलग अर्थशास्त्री ठहराव के कारणों के अलग-अलग पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। समर्स समग्र मांग की अपर्याप्तता पर और इस तथ्य पर जोर देते हैं कि निम्न स्तर में शून्य पर सीमाबद्ध होने के साथ ही साथ संभावित वित्तीय अस्थिरता के कारण मौद्रिक नीति अधिक सक्रिय नहीं हो पाती है। समग्र मांग कमजोर होने का कारण कम उपभोग की इच्छा रखने वाले प्रौढ़ लोग तथा आय वृद्धि का बहुत समृद्ध लोगों के हिस्से में होना, जिनकी उपभोग की सीमांत इच्छा बहुत सीमित है, हो सकता है।

दूसरी तरफ, टाइलर कॉवेन तथा रॉबर्ट गॉर्डन आपूर्ति संभावनाओं[3] के कमजोर होने पर जोर देते हैं। वे यह तर्क देते हैं कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद के वर्ष असामान्य थे क्योंकि औद्योगिक देशों में वृद्धि को पुनर्रचना, बिजली, दूरभाष एवं आटोमोबाइल्स जैसी प्रौद्यौगिकियों का विस्तार होने, महिलाओं के कामकाजी लोगों में शामिल होने के कारण श्रम की अधिक सहभागिता होने, वैश्विक कारोबार के बहाल होने तथा पूंजी के निवेश में वृद्धि होने से सहायता

---

* भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. रघुराम राजन द्वारा नई दिल्ली में 12 दिसंबर 2014 को फिक्की के भरत राम स्मृति व्याख्यान के अंतर्गत दिया गया व्याख्यान।

[1] उदाहरण के लिए देखें, 'द क्राइसिस ऑफ कैपिटलिज्म', वोल्फगेंग स्ट्रीक, न्यू लेफ्ट रिव्यू 71, सितंःअक्तू 2011 या 'द टु लेसन्स ऑफ द रिसेसन : द वेस्ट कांट बॉरो एंड स्पेंड इट्स वे टु रिकवरी', रघुराम राजन, फारेन अफेयर्स, भाग 91, नं. 3, मई/जून 2012.

[2] राष्ट्रीय कारोबारी अर्थशास्त्र संघ, आर्थिक नीति सम्मेलन में 24 फरवरी 2014 को दिया गया समर्स एल. (2014) का भाषण 'यू.एस. इकोनॉमिक प्रॉस्पेक्ट्स : सेक्युलर स्टेगनेशन हिस्टेरिसिस एंड जीरो लोअर बाउंड'।

[3] टाइलर कॉवेन (2013), द ग्रेट स्टेगनेशन, ईबुक, गोरडॉन आर.(2012), 'इज यूएस इकोनॉमिक ग्रोथ ओवर ? फ्लैटरिंग इन्नोवेशन कॉन्फ्रंट्स सिक्स हैडविंड्स', एनबीईआर वर्किंग पेपर 18315.

प्राप्त हुई। हालांकि, विश्व युद्ध के बाद सकल कारकों की उत्पादकता वृद्धि - वृद्धि का नए विचारों एवं उत्पादन के तरीकों से उत्पन्न होने वाला हिस्सा - अपने 1920-50 के स्तर से घट गई है। अधिक ताजा हाल की बात करें तो न सिर्फ उत्पादकता वृद्धि में और अधिक गिरावट आई है बल्कि, शिक्षा स्तर के विस्तार तथा श्रम सहभागिता दरों के साथ ही साथ कुछ देशों में जनसंख्या के वयोवृद्ध होने से श्रम बल में कमी आने जैसे कारणों से वृद्धि थमी हुई है।

कारणों की इन सूचियों से स्पष्ट हो जाता है कि समग्र कमजोर मांग में धीमी वृद्धि को संभावनायुक्त आपूर्ति से अलग करना कठिन है। जनसंख्या का वृद्ध होने से दोनों पर असर पड़ता है। सचमुच, एक दूसरे का कारण बन सकता है। उदाहरण के लिए, सामाजिक सुरक्षा अधिकारों, जिनके प्राप्त होने की संभावना नहीं है, के बावजूद संभावित वृद्धि में मंदी का अनुमान लगाते हुए हाउसहोल्ड बचत करने का प्रयास करते हुए बचत जमा कर सकते हैं। इससे मांग में और अधिक कमी आएगी। इसके विपरीत, मांग कमजोर होने की संभावना के कारण निगमों के लिए निवेश का प्रोत्साहन घट सकता है जिसके कारण संभावित आपूर्ति में वृद्धि और अधिक मंद हो जाएगी।

1970 के दशक में प्रारंभ हुई अंतर्निहित मंद वृद्धि का कारण चाहे जो भी हो, परंपरागत विपरीत परिणाम, जैसे कि प्रवासियों तथा युवाओं जैसे प्रणाली से बाहर के लोगों की बढ़ती बेराजगारी में इजाफा होने लगा, जिसका कारण यह बढ़ता हुआ आभाष था कि वृद्धि के बिना अर्थव्यवस्थाएं सामाजिक सुरक्षा के वादों को पूरा नहीं कर पाएंगी। जैसा कि समाजशास्त्री वोल्फगेंग स्ट्रीक्स लिखते हैं, ये वादे सामान्य जनता से 1960 के दशक के दौरान के वृद्धि दर्ज करने वाले वर्षों में किए गए थे, जब 'महान समाज' का सपना पूरा करने योग्य[4] प्रतीत हो रहा था। तब से सरकारी क्षेत्र के कामगारों को पेंशन एवं वृद्धावस्था स्वास्थ्य देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों के वादों में वृद्धि होती रही है। ये वादे बजट को नुकसान पहुंचाने वाली वेतन वृद्धियों को टालने के लिए किए गए थे, किंतु उनके कारण भविष्य की देयताएं बहुत बढ़ गई हैं, जिनको चुकाने का समय नजदीक आ रहा है।

इस कारण, वृद्धि एक अनिवार्यता बन कर आई और अंतर्निहित वृद्धि के 1970 के दशक से निम्न स्तर पर आने पर सरकारों ने अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए अधिक खर्च करना प्रारंभ किया। आपूर्ति संभावनाओं के भी ठहरे होने के कारण खर्च मुद्रास्फीति में परिवर्तित हो गया जो बढ़ती चली जा रही है। स्ट्रीक यह तर्क देते हैं कि औद्योगिक देशों द्वारा 1980 के दशक में मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने का मतलब यह था कि व्यय के वित्तीयन के लिए मुद्रास्फीति कर का स्थान कुछ और को लेना पड़ा। यह स्थान कर्ज ने लिया, जो पहला सर्वजनिक ऋण था। उसके बाद, सरकारों ने राजकोषीय घाटा को कम किया, जो कर्ज से निपटने हेतु निजी क्षेत्र के लिए एक प्रोत्साहन था। सभी प्रकार का बढ़ता हुआ लिवरेज, चाहे बैंकों पर हो, कॉर्पोरेटों, पारिवारिक इकाइयों या सरकारों पर हो, 2008-11 के संकट में परिणत हुआ। निजी क्षेत्र का कुछ कर्ज सरकारी देयताओं के रूप में परिवर्तित हो गया है, किंतु औद्योगिक देशों में जीडीपी के अंश के रूप में समग्र स्तर अभी भी बढ़[5] ही रहा है।

जिन सरकारों पर उत्पादकता-वृद्धि करने हेतु सुधार करने के लिए बाजार का दबाव नहीं रहा है वे उनमें विलंब करना पसंद करते हैं। परिणामस्वरूप, मौद्रिक एवं राजकोषीय प्रोत्साहनों के माध्यम से '*वृद्धि के लिए पहुंचना*' की नीति के कारण समग्र कर्ज अभी भी बढ़ रहा है और अभी भी रुका नहीं हैं। मध्य वर्ग के बीच यह बढ़ता हुआ भाव इसकी जटिलता को और बढ़ा रहा है कि उन्हें गुणवत्ता युक्त उच्च शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि वे वापस गरीबों के स्तर पर न चले जाएं, किंतु उन्होंने जो निम्न गुणवत्ता की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की है उसके साथ ही साथ गुणवत्ता युक्त उच्च शिक्षा की अत्यधिक लागत होने के कारण बेहतर जीवन यापन उनकी पहुंच से बाहर हो जाता है। अमेरिका के टी पार्टी या यूनाइटेड किंगडम में यूकेआईपी जैसे आंदोलनों के रूप में प्रकट हुए लोकवादी मध्यम वर्गीय आंदोलन इन व्यथाओं को दर्शाते हैं। मध्यम वर्ग यह स्वीकार करने लगा है कि प्रौद्योगिकी, वैश्विक वित्त एवं विदेशी प्रवास तथा व्यापार में पिछड़ेपन की संभावना इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार है, जो बहुत वास्तविक भी है।

सामान्य आर्थिक परिदृश्य में परिवर्तन हो सकता है। अमेरिका की मजबूत वृद्धि दुनिया को इस त्रास से उबार सकती है। तेल मूल्यों का निम्न स्तर पर होने से भी समग्र मांग में वृद्धि को काफी बढ़ावा मिलेगा। उद्योग जगत, नई प्रौद्योगिकियों को प्रयोग में लाने तथा मुद्रीकरण (उपायों के साथ ही साथ) का अनुमान लगाने से पहले थोड़े समय के लिए सफल हो सकता है। अच्छा प्रतिफल देने वाले मध्यम वर्गीय काम पुनः उत्पन्न हो सकते हैं, जिनकी आज हम परिकल्पना नहीं कर सकते, जैसा कि हमेशा से होता आया है। परन्तु, समग्र रूप से उद्योग जगत में स्पष्टरूप से निराशा का भाव है। एक धारणा बन गई है कि प्रत्याशा योग्य भविष्य की संभावनाओं को पूरा करने लायक वृद्धि की संभावनाएं बहुत कम हैं।

[4] फुटनोट 1 में उल्लेख किया गया है।

[5] लुइंगि बट्टिगलिऑन, फिलिप लेन, ल्युक्रेजिआ रीकलिन एंड विंसेंट रिइन्हार्ट, डिलिवरेजिंग ?, 2014, वैश्विक अर्थव्यवस्था के संबंध में जिनेवा रिपोर्ट।

यदि चिरकालिक ठहराव बना रहता है तो औद्योगिक देशों को यह हिसाब लगाना होगा कि कैसे वे अपने वादों की पुनर्रचना करें और अपने भार का वितरण करें, चाहे उनका (वादों) संबंध कर्ज से हो, सामाजिक सुरक्षा से हो या करों के निम्न स्तर से हो। दीवालिया होने के बाद अमेरिका के डेट्रॉइट शहर को पहले ही कठोर निर्णय लेना पड़ा है कि अपने पेंशनरों की सेवा करें या कर्ज चुकाएं, अपने संग्रहालयों को खोले रखें या अपने पुलिस बल को बनाए रखें। ऐसे और भी कठिन निर्णय लिए जाने होंगे।

उभरते बाजारों का क्या होगा ?

औद्योगिक देशों की धीमी वृद्धि ने उभरते बाजारों की निर्यात की प्रमुखता से होने वाली वृद्धि के परंपरागत विकास मार्ग को और अधिक कठिन बना दिया है। पिछले दशक में सचमुच, यहां तक कि चीन का विकास भी औद्योगिक देशों को अपने निर्यात के बल पर हुआ। अन्य उभरते बाजारों का विकास हुआ क्योंकि उन्होंने चीन को निर्यात किया। उभरते बाजारों को एक बार फिर से घरेलू मांग पर निर्भर होना पड़ेगा, जो बहुत अधिक प्रोत्साहन के आकर्षण के कारण हमेशा से कठिन रहा है। औद्योगिक देशों में बहुत अधिक समायोजनकारी मौद्रिक नीतियों के परिणामस्वरूप दुनिया भर में चलनिधि के बहुत अधिक चलायमान होने के कारण यह कार्य और अधिक कठिन हो गया है। वृद्धि का कोई भी संकेत विदेशी पूंजी को आकर्षित कर सकता है और यदि उसका ठीक से प्रबंध नहीं किया गया तो इन प्रवाहों के कारण ऋण तथा आस्ति मूल्यों के उछाल आ सकता है और विनिमय दर का अधिमूल्यन हो सकता है। औद्योगिक देशों की मौद्रिक नीति जब कभी मुद्रा प्रसार को रोकने के लिए बनाई जाती है (कठोर की जाती है) तब कुछ पूंजी उभरते बाजार से बाहर जाती है। उभरते बाजारों को यह सुनिश्चित करने के लिए अत्यधिक सावधानी बरतनी होती है कि वे उस समय कमजोर न पड़ें।

भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्था को मध्यम अवधि के दौरान अपनी नीतियों के लिए क्या सीख लेनी चाहिए, जिसने 2013 के ग्रीष्म काल के 'टैपरिंग के नखरे/टैपर टांट्रम' की प्रारंभिक आंधी को झेला है ? मैं चार बातों पर ध्यान केंद्रित करूंगा : 1) मेक इन इंडिया (भारत में निर्मित), 2) मेक फॉर इंडिया (भारत के लिए निर्माण), 3) पारदर्शिता तथा अर्थव्यवस्था की स्थिरता सुनिश्चित करना, तथा 4) अधिक खुली एवं न्यायपूर्ण वैश्विक प्रणाली की प्राप्ति के लिए कार्य करना।

भारत के लिए सीख

1) मेक इन इंडिया (भारत में निर्मित)

सरकार का भारत में अधिक निर्माण कार्य करने के संबंध में सराहनीय लक्ष्य है। इसका तात्पर्य भारत में निर्माण की दक्षता को बढ़ाने से है, चाहे इनका संबंध कृषि संबंधी वस्तुओं, खनन, विनिर्माण या सेवाओं में से किसी से भी हो।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार को आधारभूत संरचना का विकास करने की अपनी महत्वाकांक्षी योजनाओं को लागू करना पड़ेगा। इस योजना में निम्नलिखित शामिल हैं -

- देश के प्रत्येक हिस्से को सड़क, रेलवे, बंदगाहों तथा हवाई अड्डों के माध्यम से देशी और अंतरराष्ट्रीय बाजारों से जोड़ना। किसी गांव में सभी मौसमों के लिए उपयुक्त पक्की सड़क होने पर किस तरह की आर्थिक गतिविधियां उत्पन्न होती हैं वे असाधारण होती हैं। जैसे उद्यानिकी, कुक्कुट पालन एवं दुग्ध उत्पादन का तेजी से विकास, कपड़ा एवं विभिन्न प्रकार के सामानों की दुकानों का खुलना, ऊर्जा से संचालित होने वाली गाड़ियों के प्रयोग में वृद्धि होती है। इसी तरह राष्ट्रीय मार्गों के आसपास की गतिविधियां भी वे असाधारण होती हैं।
- ऊर्जा, खनिज तथा पानी जैसे संसाधनों की प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- प्रत्येक व्यक्ति को मोबाइलों, ब्रॉडबैंड एवं कारोबारी प्रतिनिधियों के माध्यम से व्यापक प्रणाली से इलेक्ट्रॉनिक एवं वित्तीय रूप से जोड़ना।
- बाजारों, माल गोदामों, विनियामकों, सूचना संग्राहकों तथा प्रसारकों इत्यादि जैसी सार्वजनिक संस्थाओं के विकास को प्रोत्साहित करना।
- मकानों एवं कार्यस्थलों को वहन करने योग्य तथा सुरक्षित बनाना संभव करना।

भारत में उत्पादकता बढ़ाने की दूसरी जरूरत मानव पूंजी में सुधार लाना है। इसके लिए प्रारंभ में स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण तथा साफ-सफाई की गुणवत्ता में सुधार लाना तथा उनका विस्तार करने की आवश्यकता है ताकि लोग स्वस्थ एवं काबिल बन सकें। लोगों को बेहतर एवं अधिक उचित शिक्षा, श्रम बाजार में अधिक महत्व प्रदान किए जाने वाले गुणों को विकसित करने तथा ऐसी फर्मों में रोजगार की आवश्यकता है जो उनके सीखने/प्रशिक्षण पर अधिक निवेश करें।

सरकार भारत में कारोबार करने की लागत की समीक्षा कर रही है, जिसका उद्देश्य उसमें कमी लाना है। लघु उद्यमियों की परेशानियों, जैसे अनगिनत रहस्यपूर्ण विनियमन जो उनको नियंत्रित करती हैं एवं

अनेक निरीक्षण जिनमें उद्यम को बंद करने की शक्तियां निहित हैं, से सभी परिचित हैं। इन विनियमों से शक्ति प्राप्त करने वाला अफसर एक तानाशाह बन सकता है। यह उचित है कि सरकार का मंतव्य ऐसे अफसर को कारोबार में बाधक बनने के स्थान पर उसकी सहायता करने वाला बनाने की है। विनियामक के रूप में हमें भी अपने द्वारा लगाए जाने वाले विनियमों की लागत तथा उसके लाभों की निरंतर जांच करना पड़ता है।

अंतिम रूप से, हमें वित्त की उपलब्धता को आसान बनाने की आवश्यकता है। मैं दूसरे संदर्भों में इसके बारे में पहले ही कह चुका हूं और इस विषय पर यहां चर्चा नहीं करूंगा। आगे चलने के पहले, मैं कुछ चेतावनी देना चाहूंगा।

जब हम 'मेक इन इंडिया' पर विचार-विमर्श यह मानकर करते हैं कि इसका तात्पर्य विनिर्माण पर ध्यान केंद्रित करने से है, जिसका उद्देश्य निर्यात की प्रमुखता वाले वृद्धि मार्ग पर चलना है, जैसा चीन में हुआ, तब इसमें जोखिम है। मैं नहीं समझता कि इसका मंतव्य ऐसे विशिष्ट बिंदु पर ध्यान केंद्रित करने का है।

पहला, जैसा कि मैंने तर्क दिया, धीमी वृद्धि करने वाले औद्योगिक देशों द्वारा निकट भविष्य में काफी मात्रा में होने वाले अतिरिक्त आयात को समाहित कर पाने की संभावना बहुत कम है। दूसरे उभरते बाजारों में आयात को समाहित करने की क्षमता निश्चित रूप से अधिक होगी तथा निर्यात को क्षेत्रीय आधार पर लक्ष्य करने से अच्छा प्रतिफल मिलेगा। किंतु समग्र रूप से दुनिया के, एक अन्य निर्यात की प्रमुखता वाले चीन को धारित करने की संभावना बहुत कम है।

दूसरा, औद्योगिक देश स्वयं पूंजी प्रधान लचीले विनिर्माण में इतना सुधार ला रहे हैं कि कुछ विनिर्माण गतिविधियां देश के अंदर ही की जाने लगी हैं। विनिर्मित सामान को निर्यात करने की इच्छा रखने वाले किसी भी उभरते बाजार को इस नई घटना से निपटना होगा। तीसरा, जब भारत विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात पर जोर देगा तो उसे चीन से निपटना होगा जिसके पास अभी भी अतिरिक्त कृषि श्रमिक हैं जिनका वह प्रयोग कर सकता है। निर्यात की प्रमुखता से होने वाली वृद्धि अब उतनी आसान नहीं होगी जितनी कि वह हमसे पहले इस मार्ग को अपनाने वाली एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के लिए रही है।

मैं यहां पर निर्यात के प्रति निराशावादी रुख का समर्थन नहीं कर रहा हूं - भारत अपने स्वयं के प्रतिस्पर्धी लाभ वाले क्षेत्रों में बहुत अधिक सफल रहा है और ऐसा जारी रहेगा। इसके बजाय मैं, निर्यात की प्रमुखता वाली उस रणनीति के विरुद्ध सलाह दे रहा हूं जिसमें निर्यातकों को सस्ते सामानों के साथ ही साथ निम्न विनिमय दर उपलब्ध कराने की बात समाहित है, क्योंकि इस समय इसके उतने प्रभावी होने की संभावना कम है। मैं, सिर्फ इस कारण से कि ऐसा करना चीन के लिए बढ़िया रहा है, विनिर्माण जैसे एक विशिष्ट क्षेत्र को प्रोत्साहन के लिए चयन करने के विरोध में भी सतर्क करना चाहता हूं। भारत अलग है तथा अलग समय पर इसका विकास हो रहा है तथा हमें इस बारे में संशयवादी रहना होगा कि अभी किस प्रकार से कार्य हो सकता है।

अधिक व्यापक रूप से, इस प्रकार संशयवादी होने का तात्पर्य ऐसा वातावरण तैयार करने से है जिसमें सभी तरह के उद्यम विकसित हो सकें और तब यह हमारे पास पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध उद्यमियों पर छोड़ दिया जाए कि वे क्या करना चाहते हैं। विशिष्ट उद्योगों को कच्चे सामान में इस कारण से छूट प्रदान करना कि वे महत्वपूर्ण या श्रम की प्रधानता वाले हैं, ऐसी रणनीति जो वर्षों के दौरान हमारे लिए लाभकारी नहीं रही है, के स्थान पर हमें प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकतानुसार बेहतरी के तरीके ढूंढना चाहिए और उनको उपलब्ध कराने का प्रयत्न करना चाहिए। उदाहरण के लिए, एसएमई को कम दर पर ऋण प्रदान करने की बजाय अधिक लाभ होगा यदि कोई ऐसी ऐजेंसी हो जो उत्पादों की गुणवत्ता को अभिप्रमाणित करे या कोई ऐसा प्लेटफॉर्म हो जो उनको प्राप्त वस्तुओं को बेचने में मदद करे या कोई सरकारी पोर्टल हो जो उनको विपणन की वेबसाइट तैयार करने में मदद करे। पर्यटन उद्योग को शायद आगमन के समय वीजा प्रदान करने की सुविधा तथा मजबूत यातायात नेटवर्क से सामान्यतः उनके द्वारा मांग किए जाने वाली कर रियायतों (टैक्स सॉप्स) की तुलना में अधिक लाभ होगा।

'मेक इन इंडिया' को शुल्क संबंधी प्रतिबंधों के माध्यम से आयात को प्रतिस्थापित करने की रणनीति समझना दूसरी संभावित गतलफहमी है। इस रणनीति का परीक्षण किया गया और यह असफल रही क्योंकि इसके कारण घरेलू प्रतिस्पर्धा समाप्त हुई, उत्पादकों की दक्षता में कमी आई तथा उपभोक्ताओं की लागत बढ़ी। इसके स्थान पर, 'मेक इन इंडिया' का विशिष्ट मतलब होगा, अधिक खुलापन, जिससे हम ऐसा वातावरण बना सकें कि हमारी फर्में शेष विश्व से प्रतिस्पर्धा करने लायक बनें तथा विदेशी उत्पादकों को भारत में रोजगार सृजन के लिए हमारे वातावरण का लाभ लेने को प्रोत्साहित करें।

2) भारत के लिए निर्माण करें

यदि बाहरी मांग की वृद्धि मंद होने की संभावना है तो आंतरिक बाजार के बाजार के लिए हमें उत्पादन करना होगा। इसका तात्पर्य है कि हमें सबसे मजबूत वहनीय एकीकृत बाजार का निर्माण करने के लिए काम करना पड़ेगा, जो हम कर सकते हैं और जिसके लिए देश भर में खरीद एवं बिक्री की लेनदेन लागतों को कम करने की आवश्यकता है। यातायात के भौतिक नेटवर्क में सुधार करने, जैसे कि मैंने पहले चर्चा की है, से मदद मिलेगी। कुछ और ऐसे कदम कम होंगे किंतु उत्पादक से उपभोक्ता को जाने वाली आपूर्ति श्रृंखला में अधिक दक्षता लाने और प्रतिस्पर्धी मध्यस्थों के होने से बहुत लाभ होगा।

राज्य के सीमा करों को कम करने वाले ठीक तरह से निर्मित जीएसटी बिल से वस्तुओं और सेवाओं के लिए सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय बाजार तैयार करने के महत्वपूर्ण परिणाम होंगे, जो आने वाले वर्षों में हमारी वृद्धि के लिए निर्णायक होंगे।

घरेलू मांग का वित्तीयन यथासंभव घरेलू बचतों के माध्यम से जिम्मेदारी पूर्वक किया जाना होगा। हमारी बैंकिंग प्रणाली थोड़े तनाव के समय से गुजर रही है। हमारी बैंकिंग प्रणाली को परियोजना मूल्यांकन तथा उसकी संरचना के संबंध में अतीत की गलतियों से सीख लेना होगा क्योंकि यह अर्थव्यवस्था की विशाल जरूरतों का वित्तीयन करती है। उनको अपनी दक्षता में भी सुधार लाना होगा क्योंकि उनको हाल ही में लाइसेंस प्रदान किए गए सर्वस्थानिक बैंकों के साथ ही साथ भुगतान बैंकों तथा लघु वित्त बैंकों, जिनको शीघ्र ही लायसेंस प्रदान किया जाना है, से प्रतिस्पर्धा करना होगा। उसी समय, हमको परिवर्तन लाने, या तनावपूर्ण आस्तियों की वसूली करने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करके उनका कार्य अधिक कठिन नहीं बनाना चाहिए। भारतीय रिज़र्व बैंक, सरकार के साथ ही साथ अदालतों को भी इस संबंध में काफी कार्य करना होगा।

हमें वित्तीय सेवाओं से वंचित लोगों तक उनके विस्तार का कार्य करना है क्योंकि एक बार वे वित्त का प्रबंध और बचत करना सीख जाते हैं तो उन पर जिम्मेदारी पूर्वक उधार लेने का भरोसा किया जा सकता है। देश के प्रत्येक हिस्से में वित्तीय बचतों को प्राप्त करने के लिए नई संस्थाओं एवं उत्पादों से भी हाउसहोल्ड बचत दरों में गिरावट पर रोक लगेगी और मुद्रास्फीति दर भी निम्न एवं स्थिर रहेगी। हाल के बजट तक व्यक्तियों के लिए बचत से संबंधित आय कर लाभों को व्यापक रूप से नाम मात्र की शर्तों पर निर्धारित किया गया है, जिसका तात्पर्य है कि लाभों का वास्तविक मूल्य कम हो गया है। हाउसहोल्ड बचत के लिए कुछ बजटीय प्रोत्साहनों से यह सुनिश्चित करने में मदद मिल सकती है कि देश की निवेश संबंधी वित्तीयन की जरूरतें व्यापक रूप से घरेलू बचत के माध्यम से पूरी की जा सकेंगी।

3) अर्थव्यवस्था में पारदर्शिता तथा स्थिरता सुनिश्चित करना

जैसा कि मैंने व्याख्यान में पहले तर्क दिया, पुर्तगाल एवं स्पेन जैसे विकसित देश भी घरेलू मांग को अकेले पूरा करने में असमर्थ रहे हैं। विशाल राजकोषीय घाटे, विशाल चालू खाता घाटे, ऋण एवं आस्ति मूल्यों की अधिक वृद्धि होने के कारण मुद्रा के कठोर हो जाने पर बहुत अधिक प्रोत्साहन के लिए प्रवृत्त देशों में वृद्धि धराशायी हो जाती है। इस तरह के उछाल और अप्रत्याशित वृद्धि से बचे रहने वाले कुछ देश, विशिष्ट रूप से अपने मजबूत नीतिगत ढांचे के साथ ऐसा कर पाए हैं।

एक देश के रूप में, जो किसी सत्ता केंद्र से खेमे में नहीं है, हम कभी किसी ऐसी परिस्थिति में नहीं होना चाहते जिससे हमें अनेक क्षेत्रों से सहायता की आवश्कता पड़े। अपने नीतिगत ढांचे को दुरुस्त करना पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगा।

स्पष्टरूप से, राजकोषीय मजबूती के सुस्पष्ट मार्ग को प्रशस्त करने के लिए मजबूत राजकोषीय ढांचे का होना बहुत महत्वपूर्ण है। डॉ. बिमल जालान समिति की रिपोर्ट पहले बिंदु (राजकोषीय ढांचे) के संबंध में कार्ययोजना उपलब्ध कराएगी और सरकार ने स्पष्ट संकेत दिया है कि उसकी मंशा राजकोषीय मजबूती के लिए निर्धारित किए गए मार्ग का पालन करने की है। यह एक बहस करने लायक मुद्दा हो सकता है कि क्या हमें घाटे के नियंत्रण के अंतर्गत सीमाओं में रोके रखना तथा बजट की गुणवत्ता उच्च बनाए रखना सुनिश्चित करने के लिए हमें अधिक संस्थानों की जरूरत है। कई देशों में स्वतंत्र बजट कार्यालय/समितियां होती हैं जो बजट के बारे में राय देते/देती हैं। ये कार्यालय बजट संबंधी अनुमानों का हिसाब रखने में विशेषरूप से महत्वपूर्ण होती हैं। इसमें दीर्घावधिक देयताएं भी शामिल हैं, जिनके बारे में औद्योगिक देशों में देखा गया है कि वृद्धि के समय तो उनका करार करना बहुत सरल होता है परंतु उनको पूरा कर पाना वास्तव में बहुत कठिन होता है।

मौद्रिक पक्ष में, केंद्रीय बैंक प्राथमिक रूप से मुद्रास्फीति को निम्न स्तर पर तथा स्थिर रखने पर ध्यान केंद्रित रखें तो वृद्धि के लिए सबसे बढ़िया परिस्थितियां सुनिश्चित की जा सकती हैं। हालांकि, गतिविधियों पर प्रतिक्रिया करते समय केंद्रीय बैंकों को यह समझना होगा कि उभरते बाजार औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं की तरह लचीले नहीं हैं। इसलिए अवस्फीति का मार्ग उतना कठिन नहीं होगा जितना कि औद्योगिक अर्थव्यवस्था के लिए था क्योंकि उभरता बाजार अधिक अधिक नाजुक होता है और लोगों के सुरक्षित भंडार (बफर) तथा सुरक्षा उपाय अपेक्षाकृत कम होते हैं। भारत में 'वोकर' जैसी अवस्फीति की संभावना कभी नहीं है किंतु उर्जित पटेल ग्लाइड पाथ हमारे लिए बहुत उपयुक्त है जो हमारे कमजोर होने के समय भी थोड़ी वृद्धि को सुनिश्चित करता है। इसके आगे, हम सरकार के साथ एक उचित समय सीमा पर विचार-विमर्श करेंगे जिसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ना चाहिए ताकि मध्यावधि मुद्रास्फीति 2-6 प्रतिशत के बैंड के केंद्र में पहुंचे सके।

हालांकि, केंद्रीय बैंक को मुद्रास्फीति के अलावा वित्तीय स्थिरता पर भी ध्यान देना होता है। यह गौण लक्ष्य है किंतु यदि अर्थव्यवस्था निम्न-मुद्रास्फीति के समय ऋण एवं आस्ति मूल्यों के उछाल के दौर में प्रवेश कर जाती है तो तो यह लक्ष्य प्रमुख हो सकता है। कभी-कभी वित्तीय स्थिरता का तात्पर्य होता है कि विनियामक, जिसमें केंद्रीय बैंक भी समाहित है, को लोकप्रिय भावनाओं के विपरीत जाना होता है। विनियामक की भूमिका सेंसेक्स में वृद्धि करने की नहीं है बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि अर्थव्यवस्था की निहित आधारभूत संरचना तथा वित्तीय प्रणाली वहनीय वृद्धि के लिए पर्याप्त मजबूत हों। सेंसेक्स

में होने वाली किसी भी वृद्धि का स्वागत है किंतु यह सिर्फ संपार्श्विक लाभ होता है, न कि लक्ष्य।

अंततः, निकट भविष्य में भारत चालू खाता घाटा जारी रहेगा, जिसका तात्पर्य है कि भारत को विदेशी वित्तीयन की जरूरत होगी। दीर्घावधि इक्विटी के वित्तीयन का सबसे बढ़िया ढंग प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) होता है जिसके साथ यह अतिरिक्त लाभ भी होता है कि वह अपने साथ नई प्रौद्योगिकी और प्रणालियां भी लेकर आता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करते समय हमें भारत के हितों से समझौता करने के लिए जल्दबाजी नहीं करना चाहिए - उदाहरण के लिए किसी औषधी को भारत में पेटेंट करने के लिए अपेक्षाएं एकदम जायज हैं। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि अंतरराष्ट्रीय औषधीय कंपनियां क्या कहती हैं - हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि नीतियां पारदर्शी हों तथा उन पर तुरंत कार्रवाई की जाती हो। यदि हम नई भारतीय कंपनियों के लिए कारोबार करना आसान बनाते हैं तो हम विदेशी कंपनियों के लिए निवेश करना भी तो आसान बना देंगे, क्योंकि अंततः प्रणाली के लिए तो दोनों ही बाहरी होंगे। इसका तात्पर्य यह है कि करार संबंधी विवादों से निपटने के लिए पारदर्शी एवं त्वरित विधिक प्रक्रिया होनी चाहिए और तनाव से निपटने के लिए दीवालियापन की विधिवित प्रणाली होनी चाहिए। दोनों मामलों पर सरकार कार्रवाई कर रही है।

अंततः मैं अंतरराष्ट्रीय ढांचे का रुख करना चाहूंगा।

4) अधिक खुली एवं न्यायपूर्ण वैश्विक प्रणाली की प्राप्ति के लिए कार्य करना

एक देश के रूप में, जो किसी सत्ता केंद्र के खेमे में नहीं है और जो महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों को निर्यात नहीं करता किंतु काफी पण्यों के आयात पर निर्भर है, भारत को खुले, प्रतिस्पर्धी तथा अंतरराष्ट्रीय कारोबार एवं वित्त की जीवंत प्रणाली की जरूरत है। उदाहरण के लिए हमारी ऊर्जा की सुरक्षा पिछड़े नाजुक देशों में तेल संबधी आस्तियों का मालिक होने पर आधारित नहीं है बल्कि यह सुनिश्चित करने में है कि तेल का वैश्विक बाजार ठीक ढंग से कामकाज करे और उसमें बाधा न उत्पन्न हों। हमें स्वतंत्र बहुआयामी संस्थानों की आवश्यकता है जो अंतरराष्ट्रीय आर्थिक लेनदेनों में निष्पक्ष मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह कर सकें।

दुर्भाग्यवश, अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में अभी भी अतीत में औद्योगिक देशों द्वारा स्थापित किए गए ढांचे का वर्चस्व है तथा उसका अभिशासन अभी भी उनके ही नागरिकों का प्रभुत्व है। सच कहें तो इसमें परिवर्तन हो रहा है, हालांकि यह धीमे हो रहा है। किंतु इसमें तेजी से परिवर्तन के लिए अधिक आसन्न कारण है। धीमी वृद्धि होने के साथ ही साथ बड़े कर्ज भारों के वित्तीयन की जरूरत के कारण औद्योगिक देशों द्वारा खुली वैश्विक प्रणाली में रुची लेने को ऐसे ही नहीं माना जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, औद्योगिक देश की वित्तीय प्रणाली की सुरक्षा एवं मजबूती बढ़ाने के रूप में विनियमों का संपार्श्विक प्रभाव उभरते बाजार की आस्तियों में निवेश को हतोत्साहित करना हो सकता है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि धीमी वृद्धि के कारण औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के नीति निर्माताओं का स्वयं की ओर (ध्यान अंदर की तरफ) जा सकता है, जब कि राजनीति संरक्षणवादी हो रही है। अभी भी, औद्योगिक देशों के वर्चस्व वाली बहुमुखी अभिशासन प्रणाली खुलेपन से पर्याप्त सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकती।

इसलिए, वैश्विक अर्थव्यवस्था को खुला रखने की जिम्मेदारी उभरते बाजारों पर है। इसके लिए न सिर्फ उभरते बाजारों को बहुमुखी संस्थानों में कोटा एवं प्रबंध सुधारों को लागू करना होगा बल्कि उनको नई कार्यसूचियों, नए विचारों एवं नई सोच को वैश्विक स्तर पर पहुंचाना (इन्जैक्ट करना) होगा। भारत के लिए यह और अधिक समय तक पर्याप्त नहीं हो सकता कि वह औद्योगिक देशों के प्रस्तावों का विरोध करे, भारत को अपनी ओर से कुछ प्रस्ताव लाने होंगे। और इसका तात्पर्य यह है कि हमारे अनुसंधान करने वाले विभागों, विश्वविद्यालयों एवं विचार-मंचों (थिंक टैंक) को ऐसे विचार पल्लवित करने होंगे जो अंतरराष्ट्रीय बैठकों में भारत के प्रतिनिधियों के काम आ सकें।

उपसंहार

अब मैं अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा। हम वैश्विक अर्थव्यवस्था पर उससे अधिक निर्भर हैं जितना कि हम सोचते हैं। यह निर्भरता अतीत की तुलना में अधिक धीमी गति से बढ़ रही है और यह स्वयं की ओर अधिक केंद्रित हो रही है, इसका मतलब यह है कि हमें अपनी वृद्धि के लिए क्षेत्रीय और घरेलू मांग की ओर नजरें गड़ाना होगा, जिससे भारत प्राथमिक रूप से भारत के लिए बन सके। घरेलू मांग की प्रमुखता वाली वृद्धि को संभाल पाना अपनी मुश्किलों के लिए कुख्यात है। इसके कारण विशेषकर अतिरेक में वृद्धि होती है। इसलिए हमें घरेलू समष्टि आर्थिक संस्थानों को मजबूत बनाने की आवश्यकता है, जिससे हम वहनीय एवं स्थिर वृद्धि को मजबूती प्रदान कर सकें। इसके साथ ही, हमें विदेशी बाजारों को और छोटा नहीं होने देना चाहिए और हमें खुली वैश्विक प्रणाली के लिए संघर्ष करने को तैयार रहना चाहिए। प्रतिक्रियात्मक होने की बजाय हमें कार्यसूची निर्धारित करने के लिए सक्रिय होना चाहिए। इसके लिए हमें विचार-उत्पादक संस्थानों में निवेश करने, आधिकारिक संस्थाओं के अनुसंधान विभागों, विचार-मंचों के साथ ही साथ विश्वविद्यालयों में निवेश करने की आवश्यकता है। कुल मिलाकर, व्यापक रूप से संसार की घटी हुई अपेक्षाओं के कारण हमें अपना दृष्टिकोण सीमित नहीं करना चाहिए।